सुधा अरोड़ा की कहानियों में शहरीय नारी का अंतर्द्वंद (महानगर की मैथिली और अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी के परिप्रेक्ष्य में)

ग्रीष्मा मोहन, शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अण्णामलै विश्वविद्यालय, अण्णामलै नगर – 608 002.

डॉ. एल.तिल्लैसेल्वी, आचार्यो, हिन्दी विभाग, अण्णामलै विश्वविद्यालय, अण्णामलै नगर – 608 002.

शोध सार

शहरी जीवन की गति, जटिलताएँ, और संघर्षों में समाहित नारी का चित्रण हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक है। सुधा अरोड़ा की कहानी 'महानगर की मैथिली' और 'अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी' दोनों ही शहरी नारी की मानसिकता, उसकी सामाजिक भूमिका, और व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को उजागर करती हैं। इन दोनों कथाओं में शहरी नारी का चित्रण न केवल सामाजिक ढांचे में उसके स्थान को रेखांकित करता है, बल्कि यह भी बताता है कि आधुनिकता और पारंपरिक मूल्य प्रणाली के बीच उसका जीवन कैसे लगातार संघर्षरत है। इस लेख में हम इन दोनों कहानियों का गहराई से विश्लेषण करेंगे, ताकि शहरी नारी के संघर्ष, उसकी पहचान, और आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया को समझा जा सके।

मूल शब्द: सुधा अरोड़ा, अंतर्द्वंद

प्रस्तावना

सुधा अरोड़ा हिंदी साहित्य की प्रमुख कथाकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज में महिलाओं की स्थिति, उनके संघर्ष और उनकी जिजीविषा को बड़े प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। उनकी कहानियों में नारीवादी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, खासकर शहरी जीवन से जुड़ी महिलाओं के संदर्भ में। महानगर की मैथिली और अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी उनकी दो ऐसी कहानियां हैं, जो शहरी परिवेश में महिलाओं के जीवन और उनके संघर्षों को उभारती हैं। इन कहानियों में सुधा अरोड़ा ने शहरी महिलाओं के मनोविज्ञान, उनके अकेलेपन, और समाज में उनके लिए निर्धारित सीमाओं को उजागर किया है।

सुधा अरोड़ा की कहानियाँ "महानगर की मैथिली " और "अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी" भारतीय समाज में शहरी महिला के जीवन, उसकी समस्याओं, और अंतर्द्वंद्व को समझने का सशक्त प्रयास हैं। इन कहानियों में सुधा अरोड़ा ने शहरी नारी की मनोदशा, उसकी स्वतंत्रता की आकांक्षा, और पारिवारिक व सामाजिक बंधनों के बीच उसके संघर्ष को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है।

महानगर की मैथिली शहरीय नारी का अंतर्द्वंद

उनकी कहानी' महानगर की मैथिली' में महानगर में रहकर यंत्रवत् जीवन बिताने वाली स्त्रियों के संघर्ष का सूक्ष्म अंकन किया है। इसके प्रमुख पात्र चित्रा, दिवाकर और उनके चार वर्ष की लड़की मैथिली है, जिसे घर में मैथू बुलाते हैं। चित्रा और दिवाकर दोनों काम करनेवाले थे। एकाकी परिवार होने के कारण मैथिली की देखभाल करने के लिए घर में कोई नहीं है। चित्रा एक अध्यापिका है और दिवाकर एक दफ्तर में काम करता है। इसलिए वे मैथिली को रोज ताराबाई नामक एक आया के घर में छोड़ देते हैं। छुट्टी के दिन मैथिली अपने

मां–बाप के साथ बिताना चाहती है। लेकिन एक रविवार को दिवाकर और चित्रा एक अंग्रेजी फिल्म देखने को निश्चय करते हैं। तो वे लोग मैथिली को ताराबाई के पास सौंप देते है और फिल्म देखने के लिए चले जाते हैं। मैथिली बहुत रोकर इसे अपनी असहमदी प्रकट करती है। चित्रा मैथिली से बताती है कि वे चर्चगेट हॉस्पिटल में एक बीमार आंटी को देखने के लिए जा रही है और जल्दी वापस लौट कर आएंगे। लेकिन लौटते समय बहुत देर हो जाते हैं और आते वक्त देखा कि मैथिली बुखार से तप रही है।रात भर रहने पर भी मैथिली का बुखार कम नहीं हुआ। कल चित्रा के स्कूल में परीक्षा है और दिवाकर के दफ्तर में इंस्पेक्शन है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि कल मैथिली के साथ कौन रहेगा। आखिर अनेक तर्कों के बाद वे लोग यह निश्चय करते हैं कि पहले चित्र स्कूल में जाकर कोई बंदोबस्त कर जल्दी वापस आ जाएगी तब दिवाकर ऑफिस जाएंगे।तब मैथिली बताती है कि "मम्मी जाओ ऑफिसपापा जाओ ऑफिस हम भी जाएंगे ।हमारे जूते दो मम्मी। हम ताराबाई के घर जाएंगे। "[1] पर पलंग से उतरते वक्त वह बेहोश होकर गिर पड़ती है।कहानी की शुरुआत में हमें देख सकते हैं कि चित्रा जल्दी से अपने काम करती रहती है, लेकिन दिवाकर अखबार पढ़ कर आराम से चित्रा द्वारा बनाई गई चाय पीता है, चाय की रुचि में अतृप्त होकर चाय के कप फेंक देते हैं। इससे हमें पता चलता है कि उधर चित्रा की मेहनत के लिए कोई मूल्य नहीं है। रोजमरे की जरुरतों की पूर्ती करने के लिए महानगर में पति पत्नी को काम करना पड़ता है लेकिन उनके बच्चों की हालत एक चिंतनीय विषय है। मैथिली ऐसे बच्चों का प्रतीक है। चित्रा को मैथिली से अगाध प्यार है। लेकिन कहानी की शुरुआत से ही हमें देख सकते हैं कि चित्रा का जीवन कितना व्यस्तमय है। उन्हें एक पत्नी की, मां की और अध्यापिका के दायित्व एक साथ निभाना पड़ता है। कभी–कभी वह नौकरी को छोड़ देने के बारे में सोचती है।"क्षणिक आवेश में नौकरी छोड़ देने का निर्णय चित्रा ने दिवाकर को काफी जोश के साथ सुनाया था लेकिन ममता का ज्वर उतर जाने पर वह दोनों की सम्मिलित आय में से अपनी साठे चार सौ रुपए घटाकर किसी चमत्कारी मासिक बजट तक पहुंचने की कोशिश में सफल नहीं हो पाई थी। हर बार महानगर का अर्थशास्त्र उसे मात दे जाता था।" [2]आर्थिक मजबूरी के कारण चित्रा को अपनी भीतर के ममतामयी मां को अनदेखा करना पड़ा। जब सवा महीने की मैथिली को घर में छोड़कर स्कूल जाती है तो उनकी चिंता इस प्रकार है "स्कूल में दिन भर उनका मन नहीं लगा और वह छुट्टी होने के इंतजार में खोई खोई से बैठी रही। सारा दिन उसके जेहन में नन्हे नन्हे कुल बुलाते हाथ ,पैर और चमकती हुई आंखें घूमती रही थी, जिनमें अभी मम्मी की पहचान थी नहीं उभरी थी। "[3]जब घर में मैथू दूध के लिए रो रही थी तब चित्रा ने अपने भीगी हुए ब्लाउज से परेशान होकर अपनी छाती को दबाते हुई दूध निकालकर वेशबेसिन में छोड़ रही थी। एक असहाय माँ की हालत सुधा जी हमारे सामने पेश करती है। कामकाजी औरतों को दोहरा जीवन बिताना पड़ता है। चित्रा जिसका जीवन बेटी और पति के बीच फंसी हुई है। लेकिन चित्रा अपने जिम्मेदारियों के प्रति अब अवगत है ।जब बुखार से तपती हुई मैथिली के पास कौन रुकने के बारे में दिवाकर और चित्रा के बीच में तर्क चलते हैं तब दिवाकर चित्रा से स्कूल से छुट्टी लेकर घर में बैठने के लिए कहता है। दिवाकर से गुस्सा होकर चित्रा कहती है–"तुम नहीं जाओगे तो नुकसान तुम्हारा ही होगा ना लेकिन मेरे न जाने से सवा सौ लड़कियों बैठी रह जाएंगी।" [4]

आधुनीकरण के इस वक्त में भी नारी की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन नहीं आया है। नारी घर परिवार के जिम्मेदारी निभाने के साथ-साथ अपनी अस्तित्व के बारे में भी सोचनी लगी है। आधुनिक नारी का जीवन अस्तित्व और व्यक्तित्व के बीच का एक संघर्ष गाथा है। आधुनिक नारी दूसरों को खुश करने के साथ-साथ अपनी खुशी को भी महत्व देती है। 'महानगर की मैथिली'की चित्रा भी इस तरह के एक नारी है। चित्रा लड़ती है संघर्ष करती है साथ ही साथ अपनी स्व की रक्षा भी करना चाहती है। नारी को हम हमेशा त्याग के मूर्ति के रूप में देखते हैं। लेकिन सुधा जी इसमें नारी को एक अलग दृष्टि से देखा है उनकी नारी परंपरागत रूढ़ियों, विश्वासों पर चिपकर जीनेवाली नहीं है बल्कि वह अपनी प्रगति को भी महत्व देती है। अपने कर्तव्यों और अधिकारों के प्रति भी अवगत है।

'अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी' में शहरीय नारी का अंतर्द्वंद

बाँकुड़ा में रहने वाली एक लड़की अन्नपूर्णा शादी के बाद मुंबई जा बसी है ।आज 1 साल के बाद हो अपने मां -बापू को खत लिख रही है। बचपन में बरसात के आने पोखर पर जाकर के केंचुओं को मार देती थी जो उसके लिए आनंद का कार्य था किंतु आज वही अन्नपूर्णा को बरसात अच्छी नहीं लगती और केंचुओं से उसे डर लगता है क्यों? और फिर अपनी माँ-बाप को आखिरी पत्र लिखकर अन्नपूर्णा आत्महत्या कर लेती है ।

अन्नपूर्णा के साथ यह बदलाव उसके जीवन के अनुभवों और मानसिक स्थिति में हुए बदलावों का परिणाम है। बचपन में पोखर में केंचुओं को मारने का कार्य उसके लिए एक आनंद का स्रोत था, क्योंकि वह एक छोटे बच्चे की तरह बिन सोचे-समझे खेलती थी और उसे किसी भी कार्य में भय या दयालुता का अनुभव नहीं था। यह उस समय की मासूमियत और जिज्ञासा थी, जो उसे बिना किसी डर या संवेदनशीलता के साथ आनंदित करती थी।सुधा जी के ही शब्दों में "यातना और दुख की 'सघनता' को पढ़नेवाले या सुननेवाले के भीतर उतारने के लिए एक बेहद सटीक प्रतीक की ज़रूरत थी। तभी एक दिन अपनी एक पुरानी कहानी 'महानगर की मैथिली' का शेल कॉलोनी-चेम्बूर वाला घर मेरे दिमाग में ताज़ा हो आया, जहाँ बारिश के दिनों में मोरी से लगातार निकलते केंचुओं से मैं आक्रांत रहती थी। बिना रीढ़ की हड्डी वाले लिजलिजे, पिलपिले केंचुए मुझे दहशत से भर देते थे। केंचुओ में वह दुख सघन होता दिखाई दिया। पूरी कहानी में केंचुए का प्रतीक लगातार साथ-साथ चलता है ।"[5] लेकिन जैसे-जैसे अन्नपूर्णा बड़ी होती है और दुनिया के विभिन्न पहलुओं से परिचित होती है, उसकी सोच में भी बदलाव आता है। जब वह शादी करके मुंबई चली जाती है, तो उसकी जिम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं और जीवन के अन्य पहलुओं जैसे सामाजिक जिम्मेदारियाँ, और पारिवारिक संबंध आदि उसे प्रभावित करने लगते हैं। उसकी मासूमियत और बचपन की सरलता को अब अन्य अनुभवों ने बदल दिया है। अब वह उस बचपन के आनंद को डर के रूप में देखती है, क्योंकि जीवन की कठिनाइयाँ और परिपक्वता ने उसे संवेदनशील बना दिया है। इसलिए अन्नपूर्णा अपनी माँ बाप को लिखती है "बाबा, तुम कहते थे न- आत्माएँ कभी नहीं मरतीं। इस विराट व्योम में, शून्य में, वे तैरती रहती हैं-परम शांत होकर। मैं उस शांति को

छू लेना चाहती हूँ। मैं थक गई हूं, बाबा। हर शरीर के थकने की अपनी सीमा होती है। मैं जल्दी थक गई, इसमें दोष तो मेरा ही है।" [6]

शहरीय जीवन में अन्नपूर्णा जैसे लोग अक्सर अपने बचपन की सरलता और शांति से दूर हो जाते हैं, क्योंकि यहाँ के परिवेश में जीवन की गति बहुत तेज़ होती है और हर जगह कुछ न कुछ चिंता या दबाव होता है। उसे यह महसूस होता है कि शहर में उसकी पहचान और ज़िम्मेदारियाँ अब उसे इन मासूम आनंदों से दूर कर देती हैं। इसलिए, केंचुओं और बरसात के प्रति अब उसका दृष्टिकोण डर और असहजता का हो गया है।

आजकल की शहरी नारी की स्थिति काफी अलग और जटिल है। बचपन में वह कई खेलों, खुशियों और सपनों से जुड़ी होती है, लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ी होती है, समाज की उम्मीदें और जिम्मेदारियाँ बढ़ने लगती हैं।

शहरी जीवन के दबाव और सामाजिक अपेक्षाओं ने महिलाओं को अधिक आत्मनिर्भर और मजबूत बनाया है, लेकिन इसके साथ ही उन्हें मानसिक और शारीरिक दबाव का सामना भी करना पड़ता है। यही कारण है कि वे अपनी व्यक्तिगत खुशी और बचपन के आनंद से दूर होती जाती हैं। शहरी नारी को अपने जीवन में समृद्धि की उम्मीद तो होती है, लेकिन यह समृद्धि अक्सर तनाव, अकेलापन और आंतरिक संघर्ष का कारण बन सकती है।

पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन को अनदेखा करते हैं ।इसलिए सुधा जी कहती हैं" जब तक हमारा पितृसत्तात्मक समाज अपने को बदलने के लिए तैयार नहीं होता, हर स्त्री को बदलाव के लिए आगे आना होगा और कलम उठानी होगी। पर्सनल इज़ पॉलिटिकल को समझ लें तो हर स्त्री की अपनी निजी गाथा में सामाजिक संरचना और विद्रूपताओं के बहुत से ताने-बाने गुंथे दिख जाएंगे। सच तो यह है कि मध्यवर्ग की हर स्त्री एक दिहाड़ी मजदूर है। हर स्त्री एक ऐसी सलीब पे टंगी है जिसके हाथों और पैरों में गड़ी हुई कीलें हमें दिखाई नहीं देतीं !"[7]

निष्कर्ष

सुधा अरोड़ा की कहानियाँ शहरी महिलाओं के भीतर चल रहे अंतर्द्वंद को गहराई से समझने का माध्यम हैं। "महानगर की मंथली" में जहां एक आत्मनिर्भर महिला का भावनात्मक संघर्ष दिखाया गया है, वहीं "अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी" में एक शादीशुदा महिला के जीवन का कठोर यथार्थ सामने आता है। नारी का संघर्ष हर वर्ग में अलग हो सकता है, लेकिन उसकी जड़ें एक ही हैं–समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था।

सुधा अरोड़ा की लेखनी शहरी महिला के इस संघर्ष को न केवल समझती है, बल्कि उसे पाठकों के सामने प्रभावी ढंग से प्रस्तुत भी करती है। इन कहानियों के माध्यम से वे यह संदेश देती हैं कि महिला का अंतर्द्वंद केवल उसका व्यक्तिगत संघर्ष नहीं, बल्कि समाज के ढांचे में बदलाव की जरूरत का प्रतीक है।

संदर्भग्रंथ सूचि

1. सुधा अरोडा, करवाचौथी औरत,पृ.सं: 93, बोधि प्रकाशन, जयपुर

2. सुधा अरोडा, करवाचौथी औरत,पृ.सं: 86, बोधि प्रकाशन, जयपुर

3. सुधा अरोडा, करवाचौथी औरत,पृ.सं: 84, बोधि प्रकाशन, जयपुर

4. सुधा अरोडा, करवाचौथी औरत,पृ.सं: 91, बोधि प्रकाशन, जयपुर

5. सुधा अरोडा, एक औरत की नोटबुक पृ. सं. 40, मानव प्रकाशन कोलकता

6. सुधा अरोडा, करवाचौथी औरत,पृ.सं: 146, बोधि प्रकाशन, जयपुर

7. सुधा अरोडा, करवाचौथी औरत,पृ.सं: 9, बोधि प्रकाशन, जयपुर